A5

८९१.८
राम/गी-१

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या .... ८११.८ ....
पुस्तक संख्या .... राम/श्री-१ ....
क्रम संख्या .... ८६६ ....

(51)

निराला पुरस्कार (काव्य) १९६८-६९

ीय पुरस्कार के लिए विचारार्थ प्रेषित

स्तक : गीत-अगीत

ेखक : राम कृष्ण कौशल

मान हाउस, इलीसियम हिल,

शिमला-१

ाशित तिथि : अक्तूबर, १९६८

गीत-अगीत

राम कृष्ण 'कौशल'

१९६७

कुमारसन्ज़

सोलन (हि०प्र०)

GEET–AGEET

by

RAM KRISHAN KAUSHAL

Rs. 6.00

Copy Right (c) 1967 — Ram Krishan Kaushal — Geet-Ageet

प्रथम संस्करण	... १९६७
मूल्य	.... छः रुपए
प्रकाशक	.... कुमारसन्ज़, सोलन
मुद्रक	.... कुमार प्रिंटिंग प्रैस, सोलन
आवरण	.... श्री बी०ऐस० ठाकुर ।

न कविताओं में आप की अन्तर्दृष्टि और सहानुभूति-पूर्ण हृदय
अभिव्यक्त हुआ है। मुझे इन कविताओं को पढ़ कर
हार्दिक प्रसन्नता हुई है।

—डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
टैगोर प्रोफेसर—भारतीय साहित्य
एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
पंजाब विश्व विद्यालय,
चण्डीगढ़—१४

वक्तव्य

सूखे और बाढ़ के दिन
परिवर्ती मूल्यन
पड़े थे
गीत-अगीत कुछ
सोचा
बटोर लूं ।

—राम कृष्ण 'कौशल'

आस्वादन

'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान' की बात
रानी पड़ गयी है । नया युग आ गया है: नये कवि जन्म ले रहे
और वे नयी-नयी बातें कह रहे हैं और समझते हैं कि उनकी बात
ा चाहे कोई और महत्व हो या न हो, कम से कम नयापन तो उसमें
ही । पर यह नयापन सर्वत्र ही प्रशंसनीय नहीं होता —हमारे पूर्वज
और दो चार बताते थे, अपना नयापन सिद्ध करने के लिए यदि
चार के स्थान पर पांच बताऊँ तो कदाचित कुछ नूतनता-प्रेमी
रे साहस की दाद भी दें पर फिर भी यह कथन सर्व-प्रिय हो
केगा, इसमें संदेह है । कविता गणित नहीं है, अतः गणित का
ाहरण देकर कविता की बात करना शायद ठीक न लगे, इस लिये
ा कोई और उदाहरण ले सकते हैं । हमारी प्राचीनतम उपलब्ध
ना ऋग्वेद में हम पुरुरवा को अपनी प्रेयसी उर्वशी के वियोग
निरन्तर आंसू बहाते पाते हैं —आज यह बात कम से कम चालीस-
ास शताब्दी या चार-पांच सौ दशाब्दी पुरानी पड़ गयी है,
लिए आज का कवि इसे अग्राह्य घोषित करता हुआ, इसी प्रसंग
नयी बात कह सकता है, वह प्रिया-वियोग में आंसू बहाने के
ान पर कह सकता है —'अच्छा हुआ जो उससे छुटकारा मिला,
म से कम धोबी, दर्जी और डाक्टर का खर्च तो कम हुआ !' यह
थन नवीनता की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण होता हुआ भी काव्यत्व
ा दृष्टि से बहुत मार्मिक सिद्ध नहीं होगा । अस्तु, नवीनता —और
शुद्ध नवीनता —के आधार पर काव्य का भवन निर्मित नहीं हो
कता । कविता का सम्बन्ध केवल सामयिक एवं नूतन तत्त्वों से ही

नहीं होता अपितु उन सहज वृत्तियों, भावनाओं एवं संस्कारों से भी होता है जो युग-युगों से हमारे अन्तर्मन में उद्‌बुद्ध, विकसित एवं संचित हैं। सामयिक एवं नूतन तत्त्व हमारे चेतन मन की ऊपरी सतह को ही छू पाते है, अन्तर्मन की गहराई तक पहुंच पाने की क्षमता उनमें बहुत कम होती है। केवल नूतनता एवं ताज़गी के आधार पर आकर्षित करनेवाली रचनाओं की अंतिम गति उन समाचार-पत्रों की सी होता है जिन्हें हम प्रातःकाल जिस रुचि से ग्रहण करते हैं सायंकाल तक उन्हें उतनी ही अरुचि से रद्दी की टोकरी में फेंक देते हैं। सामयिकता और नूतनता —वस्तुतः पत्रकारिता के गुण हैं जिन्हें आज भ्रान्तिवश साहित्य पर भी आरोपित करने का प्रयास किया जा रहा है। कदाचित् इसका एक कारण यह भी है कि आज का साहित्य पत्र-पत्रिकाओं के आश्रय में पल रहा है, अतः उसमें आश्रयदाता के गुणों का आ जाना स्वाभाविक है। पर इससे सच्ची साहित्यिक रचनाओं के स्थान पर साहित्यिकता-शून्य क्षणजीवी रचनाएं पनप रही हैं जिन्हें जीवित रखने के लिए पुनः अटपटी घोषणाओं एवं भ्रामक युक्तियों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु इन ऊपरी उपचारों से प्राण-शून्य रचनाओं के शव को कब तक बचाये रखा जा सकता है —फलतः हर नयी दशाब्दी में तथा कथित नयी रचनाओं एवं उनके रचयिताओं पर पुरानेपन का लेबिल लगा कर उन्हें साहित्य-क्षेत्र से निष्काषित भी कर दिया जाता है। अस्तु, कोरी सामयिकता या नूतनता के बल पर साहित्थ को स्थायी नहीं बनाया जा सकता —साहित्य के स्थायित्व का आधार तो मानव हृदय की शाश्वत वृतियों एवं स्थायी भावनाओं के सहज स्वाभाविक चित्रण में ही निहित है।

साहित्य की सामयिकता और नूतनता, उसके स्थायित्व एवं अस्थायित्व की यह चर्चा यहां अप्रासंगिक प्रतीत हो सकती है —किन्तु

ुतः ऐसा नहीं है। श्री कौशल के प्रस्तुत काव्य के हृदयंगम एवं
ास्वादन की जो सबसे पहली प्रतिक्रिया मेरे मन में हुई, उसी का
परिणाम उपर्युक्त चर्चा है। समय की हवा में बड़े-बड़े बहक जाते
वे चिरन्तन तत्त्वों को भूलकर सामयिकता के बवंडर में चक्कर
ाने लगते हैं, वस्तुतः यही क्षण परीक्षा की वेला सिद्ध होता है।
ा दृष्टि में प्रस्तुत काव्य के रचयिता इस परीक्षा में सफल सिद्ध हुए
आज के इस वातावरण में जब कि नूतनता, सामयिकता एवं
ुनिकता की दादुर-पुकार के सम्मुख मानवता का शाश्वत स्वर
पड़ गया है —श्री कौशल ने अपने व्यक्तित्व की सहजता, आस्था
दृढता एवं स्वर की सरसता को बनाय रखा हैं : मेरे विचार से
उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

श्री कौशल की कविता का स्वर उनके आंसुओं की आर्द्रता
तरलता से सना हुआ है। हृदय की तरल अनुभूतियां ही प्रायः
यों की प्रेरणा बनती है। इसी सत्य को स्वीकार करते हुए कविवर
ने कहा था —'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा
ा !' और इसी सत्य को पुनः उद्‌घोषित करते हुए श्री कौशल
ते हैं —

आंसुओं से धुल गयी जब,
हो गयी मुस्कान उज्ज्वल !
अमर निधियां बन गयी हैं,
दुःख में जो गीत गाये !

कविवर पंत के अनुसार काव्य-सर्जन के लिये' वियोग' और 'आह'
ाप्त हैं पर प्रस्तुत कवि इससे एक कदम आगे की बात कहता है।
के लिये आंसुओं का मेल मुस्कान के साथ और दोनों के मेल से
स्फुटित उज्ज्वल मुस्कान विशेष रूप से अपेक्षित है। दूसरे शब्दों

नहीं होता अपितु उन सहज वृत्तियों, भावनाओं एवं संस्कारों से भी होता है जो युग-युगों से हमारे अन्तर्मन में उद्‌बुद्ध, विकसित एवं संचित हैं। सामयिक एवं नूतन तत्त्व हमारे चेतन मन की ऊपरी सतह को ही छू पाते है, अन्तर्मन की गहराई तक पहुंच पाने की क्षमता उनमें बहुत कम होती है। केवल नूतनता एवं ताज़गी के आधार पर आकर्षित करनेवाली रचनाओं की अंतिम गति उन समाचार-पत्रों की सी होता है जिन्हें हम प्रातःकाल जिस रुचि से ग्रहण करते हैं सायंकाल तक उन्हें उतनी ही अरुचि से रद्दी की टोकरी में फेंक देते हैं। सामयिकता और नूतनता —वस्तुतः पत्रकारिता के गुण हैं जिन्हें आज भ्रान्तिवश साहित्य पर भी आरोपित करने का प्रयास किया जा रहा है। कदाचित् इसका एक कारण यह भी है कि आज का साहित्य पत्र-पत्रिकाओं के आश्रय में पल रहा है, अतः उसमें आश्रयदाता के गुणों का आ जाना स्वाभाविक है। पर इससे सच्ची साहित्यिक रचनाओं के स्थान पर साहित्यिकता-शून्य क्षणजीवी रचनाएं पनप रही हैं जिन्हें जीवित रखने के लिए पुनः अटपटी घोषणाओं एवं भ्रामक युक्तियों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु इन ऊपरी उपचारों से प्राण-शून्य रचनाओं के शव को कब तक बचाये रखा जा सकता है —फलतः हर नयी दशाब्दी में तथा कथित नयी रचनाओं एवं उनके रचयिताओं पर पुरानेपन का लेबिल लगा कर उन्हें साहित्य-क्षेत्र से निष्काषित भी कर दिया जाता है। अस्तु, कोरी सामयिकता या नूतनता के बल पर साहित्थ को स्थायी नहीं बनाया जा सकता —साहित्य के स्थायित्व का आधार तो मानव हृदय की शाश्वत वृतियों एवं स्थायी भावनाओं के सहज स्वाभाविक चित्रण में ही निहित है।

साहित्य की सामयिकता और नूतनता, उसके स्थायित्व एवं अस्थायित्व की यह चर्चा यहां अप्रासंगिक प्रतीत हो सकती है —किन्तु

वस्तुतः ऐसा नहीं है। श्री कौशल के प्रस्तुत काव्य के हृदयंगम एवं आस्वादन को जो सबसे पहली प्रतिक्रिया मेरे मन में हुई, उसी का परिणाम उपर्युक्त चर्चा है। समय की हवा में बड़े-बड़े बहक जाते हैं, वे चिरन्तन तत्त्वों को भूलकर सामयिकता के बवंडर में चक्कर काटने लगते हैं, वस्तुतः यही क्षण परीक्षा की वेला सिद्ध होता है। मेरी दृष्टि में प्रस्तुत काव्य के रचयिता इस परीक्षा में सफल सिद्ध हुए हैं। आज के इस वातावरण में जब कि नूतनता, सामयिकता एवं आधुनिकता की दादुर-पुकार के सम्मुख मानवता का शाश्वत स्वर मंद पड़ गया है —श्री कौशल ने अपने व्यक्तित्व की सहजता, आस्था की दृढता एवं स्वर की सरसता को बनाय रखा हैं : मेरे विचार से यह उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

श्री कौशल की कविता का स्वर उनके आंसुओं की आर्द्रता एवं तरलता से सना हुआ है। हृदय की तरल अनुभूतियां ही प्रायः कवियों की प्रेरणा बनती है। इसी सत्य को स्वीकार करते हुए कविवर पंत ने कहा था —'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान !' और इसी सत्य को पुनः उद्‌घोषित करते हुए श्री कौशल कहते हैं —

आंसुओं से धुल गयी जब,
हो गयी मुस्कान उज्ज्वल !
अमर निधियां बन गयी हैं,
दुःख में जो गीत गाये !

कविवर पंत के अनुसार काव्य-सर्जन के लिये' वियोग' और 'आह' पर्याप्त हैं पर प्रस्तुत कवि इससे एक कदम आगे की बात कहता है। उसके लिये आंसुओं का मेल मुस्कान के साथ और दोनों के मेल से प्रस्फुटित उज्ज्वल मुस्कान विशेष रूप से अपेक्षित है। दूसरे शब्दों

में, उसके गीत केवल व्यथित हृदय की वेदना या निराश हृदय की आर्त्त पुकार पर आधारित नहीं हैं अपितु उनमें वेदना को चुपचाप पी जाने का साहस, निराशा पर विजय पाकर उसे नूतन स्वप्नों से मंडित कर पाने का सामर्थ्य तथा दुःख के अंधकार में भी अपनी आकांक्षाओं को ज्योतित् कर पाने का बल भी विद्यमान है। संघर्ष की घड़ियों में पलायन कर जाने वालों के अनुकर्त्ता वे नहीं हैं अपितु तिमिर को प्रकाश में परिणत कर देने का दृढ संकल्प लेने वालों के संदेश-वाहक हैं। उनकी इस शक्ति का रहस्य —उसका सबसे बडा स्रोत —है, उनकी अटल आस्थावादिता और सुदृढ सहिष्णुता —

जब वेग पवन का बढ़ जाए,
अंचल में दीप छिपा लेना।
× × ×
कुछ कहते-कहते रुक जाना,
कुछ आंखों-आंखों कह देना ;
कुछ सुन लेना चुपके-चुपके,
कुछ चुपके-चुपके सह लेना ;
कुछ सहज नहीं होता है रे,
प्राणों से नेह निभा लेना।

यदि इस तथ्य को ध्यान में रखकर विचार करें तो यह भली भांति स्पष्ट होगा कि उन्होंने अश्रुओं के साथ उज्ज्वल मुस्कान को आवश्यक क्यों माना है ?

वेदना के समुद्र में कवि ने डुबकी लगायी है, दुःख की आंधियों का उसने सामना किया है, इसकी झलक उनके अनेक गीतों में मिलती है–

यह भी कोई जीना है क्या ?
सूनी आंखें बुझा-बुझा मन,
ऐसे कब तक चले चलेंगे,
कब तक भार सहेगा जीवन ?

या —

मन की बातें भी सोचो क्या,
कहने की बातें होती हैं,
सपने तो सपने होते हैं,
रातें बो रातें होती हैं ।।

× × ×

आज है उन्माद मन में
और ये मजबूरियां हैं,
आज पंखों में लगन है,
और नभ की दूरियां हैं ।।

× × ×

अश्रु पलकों में छिपाकर,
फिर न यूं मुस्का सकूं मैं,
फिर न ऐसे सुन सको तुम,
फिर न ऐसे गा सकूं मैं ।।

कवि की इस व्यथापूर्ण मनः स्थिति का रहस्य एकाएक स्पष्ट नही हो पाता पर लगता है कहीं कोई स्वप्न था जो टूट गया है, कोई मार्ग था जो खो गया है और कोई आधार था जो छूट गया है। इस टूटे हुए स्वप्न, खोये हुए मार्ग एवं छूटे हुए आधार की कहानी खंड-खंड रूप में हमारे सामने आती है, यथा —

महत्ता कौन सपनों की,
बिखरते हैं संवरते हैं।
कभी पर एक ही सपना,
युगों की साध बन जाता,
प्रलय तक सांस अकुलाती ।।

× × ×

कहीं छोर मिलता नहीं गगन का,
बहुत दूर जा कर विहग लौट आया।

× × ×

किसी दिन निकट आ गये दूर के भी,
किसी दिन बने मीत भी हैं पराये।
चला छोड़ जीवन कहानी यही है,
छला आंसुओं ने हँसी का लुभाया॥

× × ×

सब आकर्षण भ्रम होता है,
सपनों की माया होती है,
जिस पर आँखें लुट जाती हैं,
रूप नहीं छाया होती है।

और जब अतीत की अनुभूतियां किसी की याद बन कर रह जाती हैं तो उसके प्राणों की अकुलाहट अमर्ष वेदना, उपालंभ, पश्चाताप एवं तर्क के स्वरों में फूट पड़ती है —

अनजाने ही सहमी सहमी,
याद पुरानी आ जाती है।
घुटती आहों के स्वर में फिर,
नई रवानी आ जाती है॥

× × ×

अमिट भूल बन कर खटकने रहे हैं।
बहुत सोच कर थे कदम जो उठाये॥

× × ×

असंभव नहीं था कि बचकर निकलते,
बहक ही गये पर कदम जिन्दगी के ।।

× × ×

मैं कहता हूं भोलेपन का पार नहीं होता है कोई,
सच पूछो तो आशाओं का सार नहीं होता है कोई,
फिर भी जाने किस आशा पर मैं इतना कुछ सह जाता हूं ।।

कवि के निराश हृदय की अभिव्यक्ति इस प्रकार अनेक गीतों में अनुभूतिपूर्ण शब्दों में हुई है। उसके ये उद्‌गार हमारे मन को न केवल आकृष्ट करते है अपितु वे उद्वेलित, तरंगित एवं आन्दोलित भी करते है। उनकी संवेद्यता एवं संप्रेषणीयता का मूलाधार अनुभूति की सहजता एवं अभिव्यक्ति की सरलता में निहित है।

इन व्यथापूर्ण उद्‌गारों के बीच में एक-दो गीत ऐसे भी हैं जहां एकाएक प्रिय का सान्निध्य पा जाने के कारण कवि का मन नाच उठा है, झूम उठा है ! ऐसे गीतों में उसकी लेखनी थिरकती हुई सी, स्वर गूंजता हुआ सा और समस्त वातावरण उसका अनुसरण करता हुआ सा दिखाई पड़ता है, वस्तुतः कवि की कल्पना-शक्ति का वैभव इन उल्लासपूर्ण उद्‌गारों में अपनी संपूर्ण निधि के साथ प्रकट हुआ है —

धरा की सतरंगी का छोर
थिरक सा गया गगन की ओर।
उठी कण-कण में एक हिलोर
हुआ जड़-चेतन आत्म-विभोर !

आत्म-मिलन की इस वेला में कवि को समस्त जगत् प्रणय-सुख में उन्मद व उल्लसित दृष्टिगोचर होने लगता है :

द्रुमों ने झुक-झुक कर साभार,
लता को चूम किया स्वीकार,

दृगों में स्वप्न हुए साकार,
कुसुम बन खिला कली का प्यार !

अनुभूति की समृद्धि यहां शैली के वैभव में परिणत हो गई है—अभिव्यंजना शैली के सर्वोत्कृष्ट तत्त्व—भारतीय काव्य शास्त्रियों की अलंकृति, रीति और व्यंजना, और पाश्चात्य आलोचकों की प्रतीकात्मकता और बिम्ब-योजना—यहाँ अनायास ही एकत्र होकर मिलन का त्योंहार मनाते दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः कवि का यह वैयक्तिक मिलन आत्मगत चेतना की व्यापकता के कारण प्रकृति के विराट मिलन में ध्वनित हो उठता है और उसका संगीत गगन की ऊँचाई को छूने लगता है—

मिले तरु-शाखा पर दो मीत,
निभाने प्रेम-मिलन की रीत।
हुए कुछ अतुर, कुछ भयभीत,
गगन में फैल गया संगीत ।।

अस्तु, कवि के लिए विरह और मिलन की अनुभूतियाँ किसी संकीर्ण भाव-भूमि एवं चेतना के सीमित फलक पर चित्रित नहीं हैं अपितु उनके पीछे हृदयकी उस उदारता एवं चेतना की उस व्यापकता के दर्शन होते हैं जो सौन्दर्य को औदात्य में और प्रणय को वरदान में परिणत कर दे। यही कारण है कि उनका कवित्व वैयक्तिकता की सीमाओं में ही अवरुद्ध नहीं हो गया अपितु उसमें सामाजिकता एवं सार्वजनीनता भी सर्वत्र मुखर है। इसी लिए वे एक ओर तो कष्टों के कंटकों, अभावों की जलन और जीवन के कटु सत्यों को सहर्ष स्वीकार करते हुए—उन्हें चुनौती देते हुए—दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर सामाजिक वैषम्य, अर्थ-लोलुपता एवं अनास्था का तिरस्कार उपेक्षा, व्यंग्य एवं उपहास के द्वारा करते हुऐ दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः ऐसे क्षणों में उनकी वाणी साधना के

दर्प, व्यंग्य की तीक्ष्णता एवं उल्लास की मस्ती से दीप्त हो उठती है ; यथा—

निशा को दिन समझते हैं दिवस को रात गिनते हैं।
तुम्हारी साधना वाले किसी को क्या समझते हैं।
विजय उनकी नहीं होती, पराजय भी नहीं उनकी,
सभी कुछ सौंप जो तुमको, तुम्हें अपना समझते हैं।

× × ×

पागल हूँ मैं इसीलिए तो
पागल लगती दुनियाँ सारी।
बिन पैसे ही प्यार माँगता
नहीं जानता दुनियाँ दारी।

× × ×

एक छलना है जिसे जग नाम देता है सुखों का।
दुःख ने जो कुछ दिया है, बन सकेगा क्या भुलाए॥

वस्तुतः यहां आकर कवि को काव्य-साधना सत्य की साधना बन गई है। साधना की इसी स्थिति में वह शान्ति है जिसके बल पर वह जलने का वरदान माँग सके; स्नेह में एक अटल विश्वास पैदा कर सके और अंधकार की रात्रि में भी ज्योति की रेखा जगा सके—ऐसी ही स्थिति में यह कहने का साहस कर सकता है—

तिमिर हूँ मैं तुम्हारी ज्योति को आकार दूँगा।

अंत में मैं यही कहूँगा कि प्रस्तुत कृति में मुझे वैयक्तिकता और सामाजिकता, सौन्दर्य और औदात्य, अनुभूति और अभिव्यक्ति, स्वर-साधना एवं शिल्प-योजना का एकान्त समन्वय दिखाई पड़ा है। उसके

रचयिता में निश्चित ही काव्य-प्रतिभा, कवि हृदय एवं अभिव्यक्ति-क्षमता का सामंजस्य है। इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के लिए मैं हृदय से उनका अभिनन्दन करता हुआ, आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वे परिस्थितियों की प्रतिकूलता एवं वातावरण की प्रतिक्रिया से निरुत्साहित न होकर, इसी प्रकार आपनी साधना में लगे रहेंगे।

—डा० गणपति चन्द्र गुप्त,
एम.ए.पी.एच.डी., डी.लिट्.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
पंजाब विश्व विद्यालय स्नातकोत्तर-अध्ययनकेन्द्र
शिमला-३

गाँधी-जयन्ती ;
१९६७

हर चेहरा
जाना पहचाना
हर आवाज़
सुनी सुनी सी
हर सुबह
स्वीकारती सी
नया सूरज
नहीं उगता

दर असल
चलने को विवश
ये रास्ते
बहुत चल कर भी
नहीं जाते कहीं
हैं बने रहते
यहीं आस पास ही
अन्यथा
यह पैण्डूलम
कभी का
पहुंच कर कहीं
गतिछिन्न
हो चुका होता !

यदि हैं
तो विगत है
या अनागत
बीच की रेखा अकल्पित
एक अस्वीकृत स्वीकृति सा
अरूपित रूप मेरा
चित्र गति का
अस्तित्व की दीवार पर
लटका हुआ !

सन्नाटे में
अटकी हुई
कोहराई दिशाओं की
क्षीण स्मृति से
चुपचाप
लटकी हुई
पदचाप
गति का मात्र आभास
उलझे हुए धागों सी
भटकी हुई सड़कों की
बेबसी का एहसास
भीड़
वीरानियों की
या
भीड़ की वीरानियां
एक बात
दिन सी
उदास रात !

अंधेरे में
अंधी गली में
भाग भाग कर
मरियल दिल कुत्ता
जाने क्या सुनता
क्या कहता है
भौंकता है
भौंकता रहता है
सोने नहीं देता

आता है गुस्सा
जी करता
तोड़ दूं टांग
या मार कर पत्थर
निकाल दूं जान,
लेकिन सोचता
दो जाने
कुत्ता तो है
मर जाएगा
बेचारा
रौनक है मुहल्ले की !

अंधेरे में
आस्मां को चीर कर
चुपचाप
निकल जाता है, एक तारा,
पुच्छल या कृत्रिम,
कौन जाने !

कल रात
कितने ही दिनों पर
दामिनी ने
द्वार घन का खटखटाया
याद नीड़ में
एकाकी
दुबका बैठा
मन पारवी
सिहराया, बौराया

बात बात में
एक कसक सी
पुलकित कर गई
घर, आंगन,
वन,
ओर, छोर
सांस धरा की
बहकी बहकी
गीले कर गई
अम्बर की पलकों के कोर
दिनों पुरानी
बात
लगी थी
कल की बात
कल रात ।

निकटता और दूरी
कुछ नहीं होती
क्षितिज अपने
सिकुड़ते फैलते हैं
हमें जो बीतते लगते
दिवस औ' रात
वे तो रास्ते के
मील पत्थर हैं
गुज़रते वे नहीं मानों
गुज़रती ज़िन्दगी है
मिनट की सूई की मानिंद
सीमित दायरे में
विश्व मानस की तरंगें हम
विलग भी, एक भी हैं
निकटता पास
दूरी दूर लगती है
नज़र के फेर के कारण ।

बिन मौत
मरी
अतृप्त ज़िंदगी की
अशरीरी रूह
भटकती रहती है यहां
इसीलिए
इस चौराहे से
हर क्षण
गुज़रता है
सहमा सहमा सा
और जो गुज़र गया
वह नहीं लौटता ।

दो सगी बहनें
ज़िंदगी और मौत
रूठीं
तो रूठीं रहीं।
न विलग हुए
न मिल ही सके
दो चुम्बकीय ध्रुव।

तुम जब कहते गीत सुनाओ
मैं खोया सा रह जाता हूं।

कटने को तो कट जाते हैं
भले बुरे दिन जैसे तैसे
मैं तो मानूं किसी तरह पर
मन को समझाऊं, तो कैसे

मन की बातें भी सोचो क्या
कहने की बातें होती हैं
सपने तो सपने होते हैं
रातें तो रातें होती हैं।

जाने क्या कहना होता है
ना जाने क्या कह जाता हूं।

बनती जो न कभी बनाए
ऐसी कोई बात न होती
जिसकी सुबह कभी न आए
ऐसी कोई रात न होती

पर अनजाने सहमी सहमी
याद पुरानी आ जाती है
घुटती आहों के स्वर में फिर
नई रवानी आ जाती है।

जाने किन लहरों में डूबा
किन लहरों में बह जाता हूं।

सब आकर्षण भ्रम होता है
सपनों की माया होती है
आंखें जिस पर लुट जाती हैं
रूप नहीं छाया होती है।

मैं कहता हूं भोलेपन का
पार नहीं होता है कोई
सच पूछो तो आशाओं का
सार नहीं होता है कोई

फिर भी जाने किस आशा पर
मैं इतना कुछ सह जाता हूं।

तुम्हें देख कर मौन कभी तो
जी करता जी भर कर रो लूं।

यह भी कोई जीना है क्या
सूनी आंखें बुझा बुझा मन
ऐसे कब तक चले चलेंगे
कब तक भार सहेगा जीवन
यदि मुस्का दो बाधाओं पर
तो मैं अपने श्रम सीकर से
घोर निशा की कालख धो लूं।
तुम्हें देख कर मौन कभी तो
जी करता जी भर कर रो लूं।

दूर कहीं पर वंशी का स्वर
कर देता पनघट को चंचल
जाने क्या कुछ कह सुन जाता
झुक झुक कर धरती से अम्बर
कहता सुनता देख सभी जग
अपना भी जी करता प्रिय, पर
कैसे बोलूं किस से बोलूं
तुम्हें देख कर मौन कभी तो
जी करता जी भर कर रो लूं।

सच भी कभी कभी तो मानव
करता है कुछ होता है कुछ
प्रश्न चिह्न इतिहास बना है
कैसे हो जीवन में चिर सुख
पर ऐसे क्या कुछ बनने का
जटिल ग्रन्थियां इस जीवन की
कुछ तुम खोलो कुछ मैं खोलूं
तुम्हें देख कर मौन कभी तो
जी करता जी भर कर रो लूं।

कहीं छोर मिलता नहीं है गगन का
बहुत दूर जाकर विहग लौट आया
कई दीप होंगे मधुर आस में जो
जला कर बुझाए बुझा कर जलाए
किसे याद हैं आज तक जो घरौंदे
बना कर गिराए गिरा कर बनाए
रहे स्वप्न सपने बने अंत तक, पर
नहीं मानता मन बहुत ही मनाया
कहीं छोर मिलता नहीं है गगन का
बहुत दूर जाकर विहग लौट आया।

किसी दिन निकट आ गये दूर के भी
किसी दिन बने मीत भी हैं पराए
अमिट भूल बन कर खटकते रहे हैं
बहुत सोच कर थे कदम जो उठाए
वही भूल कर याद आया किसी दिन
किसी दिन जिसे भूल कर था भुलाया
कहीं छोर मिलता नहीं है गगन का
बहुत दूर जाकर विहग लौट आया ।

रहा चांद घटता रहा चांद बढ़ता
रहे चांदनी के सुसंकल्प सारे
नहीं धुल सकी दीनता रात की है
ढुलकते रहे मोतियों से सितारे
चला छोड़ जीवन कहानी यही है
छला आंसुओं ने हंसी का लुभाया
कहीं छोर मिलता नहीं है गगन का
बहुत दूर जाकर विहग लौट आया ।

किये न हुए दूर ग़म जिन्दगी के
सिसकते रहे प्राण मन ज़िन्दगी के।

असम्भव नहीं था कि बच कर निकलते
बहक ही गए पर कदम ज़िन्दगी के।

किसे थी यह आशा किसे यह पता था
कि काटे कटेंगे न दिन जिन्दगी के।

वे आएं न आएं बहारों से कह दो
नहीं खिल सकेंगे सुमन ज़िन्दगी के।

स्वप्न साकार होते कभी तेरे कौशल
अगर कुछ बदलते नियम जिन्दगी के।

वह रंग न आया जीने में
जीवन में वह उल्लास न आया
होली तो आती रहती है।

कितना रंग लुटाया जाने
कलि कुसुमों की मुस्कानों ने
गाये कितने गीत न जाने
कोकिल ने इन उद्यानों में
फिर २ कर फिर मधु ऋतु आई
पर इन अधरों पर हास न आया
होली तो आती रहती है।

सुनते हैं थी जली होलिका
और अमर प्रह्लाद हुआ था
जल गई थी हिंसा निर्दयता
और अमर आह्लाद हुआ था
पर इन शंकित नयनों को
क्यों अब तक भी विश्वास न आया
होली तो आती रहती है।

जिस में रँग कर, प्राण गला कर
चू पड़ते धरती पर बादल
जिस में रँग कर फूल सुकोमल
चढ़ जाते प्रतिमा-चरणों पर
जाने क्यों उस एक रंग का
जीवन में आभास न आया
होली तो आती रहती है।

तुमने देखा
कभी कभी मन
ऐसे लगता
जैसे सावन की एकाकी
भीग रही कोई संध्या हो

सोचा करता
ऐसे में जो
स्नेह सरसाते
दीप जलाते
मुस्का दो तुम
तो कैसा हो ।

मेरी बातों पर मत जाना
मैं पागल हूं।

मधु की सौरभ की दुनिया है
आंख सभी की जिस पर होती
मेरी आंखें और कहीं पर
मुझ को लगते आंसू मोती
रोना आता जिस पर तुम को
मुझ को भाता है मुस्काना
मेरी बातों पर जाना
मैं पागल हूं।

पागल हूं मैं तो इसी लिए तो
पागल लगती दुनिया सारी
बिन पैसे ही प्यार मांगता
नहीं जानता दुनियां-दारी
सीधा सा मैं प्राणी बाबा
नहीं जानता बात बनाना
मेरी बातों पर मत जाना
मैं पागल हूं।

मेरी बातें सपनों की हैं
सपने तो सपने होते हैं
मैं पूछूंगा इस दुनिया में
अपने कब अपने होते हैं
अर्थ हीन पर, मत सुनना तुम
मेरा रोना, मेरा गाना
मेरी बातों पर मत जाना
मैं पागल हूं।

बन्धन कोई किसी तरह का
नहीं मानता है मन मेरा
ऊंच नीच की दीवारों में
घुटने लगता है दम मेरा
जाने मैं कब क्या कह बैठुं
तुम मत मुझ को पास बुलाना
मेरी बातों पर मत जाना
मैं पागल हूं।

गिला ना मुझको तुमसे कोई
गिला न दुनिया-दारी से है
मुझ को कुटिया से क्या लेना
प्रेम ना महल अटारी से है
जाओं जिस पथ से जी चाहे
सांझ पड़े पर तुम घर आना
मेरी बातों पर मत जाना
मैं पागल हूं।

जब वेग पवन का बढ़ जाए
अंचल में दीप छिपा लेना।

कुछ कहते कहते रुक जाना
कुछ आंखों आंखों कह देना
कुछ सुन लेना चुपके चुपके
कुछ चुपके चुपके सह लेना
रहने देकर मन की मन में
तुम गीत प्रणय के गा लेना
जब वेग मन का बढ़ जाए
अंचल में दीप छिपा लेना।

नभ में नीरव तारे होंगे
मन में होंगी बातें मनकी
कुछ सपने होंगे रंग भरे
कुछ यादें बीते जीवन की
जब चांद घटा में मुस्काए
तुम उर की पीर सुला लेना
जब बेग पवन का बढ़ जाए
अंचल में दीप छिपा लेना।

कुछ संयम से कुछ निश्चय से
निज यौवन मन छलते जाना
तिल २ कण २ सुरभित करते
कण २ तिल २ जलते जाना
कुछ सहज नहीं होता है रे !
प्राणों से नेह निभा लेना
जब वेग पवन का बढ़ जाए
अंचल में दीप छिपा लेना।

जब बिखरा दे जागृति-पथ पर
निंदिया निज सपने मृदुदल से
नीरव तारों के दीप सुभग
बुझ चलें उषा के अंचल से,
शबनम पलकों की ओट लिए
कलि कुसुमों सम मुस्का देना
जब वेग पवन का बढ़ जाए
अंचल में दीप छिपा लेना।

मोतियों से जड़ी वेणियों में गुँथे
राग के फूल सा यह सुभग चन्द्रमा
याद के नीड़ सा रात का यह समां ।

जागरण के सपन से सजाए नयन
मूकता में मुखर नींद की भावना
मूक आराधना, रात का यह समां ।

वायु की ओट में जल रहे दीप की–
ज्योति में धुल रही शलभ की कालिमा
प्यार की साध सा, रात का यह समां ।

हैं शिथिल क्यों अधर, मूक क्यों बांसुरी
स्नेह की रागिनी, सो रही तुम कहां
प्राण की याचना रात का यह समां।

कुन्तलों में छिपाए छिपेंगे नहीं
मुस्कराते नयन लाज की लालिमा
प्रातः की सूचना रात का यह समां।

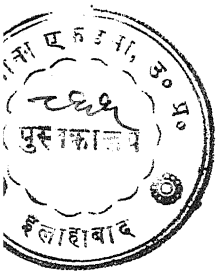

आज सुन लो गीत मेरे मीत मेरे
फिर न ऐसे सुन सको तुम
फिर न ऐसे गा सकूं मैं।

आज है उन्माद मन में
और ये मजबूरियां हैं
आज पंखों में लगन है
और नभ की दूरियां है
अश्रु पलकों में छिपा कर
फिर नहीं मुस्का सकूं मैं
फिर न ऐसे सुन सको तुम
फिर न ऐसे गा सकूं मैं।

फिर कभी मल्हार गाना
भूल जाए प्यास मेरी
स्नेह की बाती जलाना
भूल जाए आस मेरी
स्वप्न की रंगीनियों से
फिर न जी बहला सकूं मैं
फिर न ऐसे सुन सको तुम
फिर न ऐसे गा सकूं मैं ।

एक सीमा है नज़र की
एक सीमा रूप की है
एक सीमा चांदनी की
एक सीमा धूप की है
आज है जो पास मेरे
फिर नहीं वह पा सकूं मैं
गीत मेरे मीत मेरे
फिर न ऐसे गा सकूं मैं ।

काल की इस चाल का रे
भेद कुछ पाया नहीं है
बीत जो भी क्षण गया है
लौट कर आया नहीं है
जा रहा हूं कौन जाने
लौट कर भी आ सकूं मैं
गीत मेरे मीत मेरे
फिर न ऐसे गा सकूं मैं ।।

आज का दिन
पर्व का दिन

आज सागर में तरंगें
आज धरती पर उमंगें
आज का दिन परम पावन
आज का दिन
पर्व का दिन

युग युगों के सकल बंधन
खुल गए थे आज के दिन
आज का दिन
परम स्वर्णिम
आज का दिन
पर्व का दिन

साक्षी में राष्ट्रध्वज की
तोड़ कड़ियां भेद मत की
आज व्रत लो
एक अनुपम
आज का दिन
पर्व का दिन

स्नेह की बाती जलाओ
आरती मां की सजाओ
प्रेम का हो
धूप चन्दन
आज का दिन
पर्व का दिन

चूड़ शिखर शाली गिरि जागे
जाग उठा किन्नर कैलाश

अंड़ाई ली मणि महेश ने
कण कण में जागा विश्वास

खिले कुसुम कलियां मुस्काईं
हिम गिरि के श्यामल अंचल में।

पथ पनघट पर झंकार हुई
फिर नयन खिले अरमान जगे

लहरें मचलीं तट झूम उठे
जड़ चेतन में नव प्राण जगे

नई उषा नव जीवन लाई
हिम गिरि के श्यामल अंचल में।

फिर श्रम तरू पर फल फूल लगे
मानव के मंजुल गान जगे

पकवान रचे नव बधुओं ने
फिर खेत जगे खलिहान जगे

हंसा गगन धरती शर्माई
हिम गिरि के श्यामल अंचल में।

घुमुड़ घुमुड़ घिर आई थी
मतवाली बदली सावन की
मदभरी पवन में दूर गगन में
पंछी निज पर तोल रहा था।

झुक झुक कर थीं झूम रहीं
दो डालियां आम औ' जामन की
प्राणों में बोल कोयलिया का
इक नई विकलता घोल रहा था।

अबके भी नहीं आवोगे पी
आय गई ऋतु सावन की
पीपल की उस डाली से
यह गीत झूलना झूल रहा था।

थी बरस रही बदली झर झर
नयनों से फूट रहे निर्झर
चुप चुप एकाकी चौपाली में
गूं गूं चरखा बोल रहा था।

निरख निरख कर दुख अविरल
शशि तारों में करुणा चमकी
तिल तिल कण कण कर प्राण जले
न तिमिर मिटा न श्वास रुकी

उमड़ उमड़ कर मन सागर
घिर आया पलकों के नभ में
रिम झिम रिम झिम सावन बरसे
न टेक मिटी न प्यास बुझी

उस दूर क्षितिज के पार सुना
बँट रहा परम आनन्द अमर
युग युग पल पल चल चल हारे
न राह कटी न आस मिटी !

धरा की सतरंगी का छोर
थिरक सा गया गगन की ओर
उठी कण कण में एक हिलोर
हुआ जड़ चेतन आत्म विभोर।

द्रुमों न झुक झुक कर साभार
लता को चूम किया स्वीकार
दृगों में स्वप्न हुए साकार
कुसुम बन खिला कली का प्यार।

मिले तरू शाखा पर दो मीत
निभाने प्रेम मिलन की रीत
हुए कुछ आतुर, कुछ भयभीत
गगन में फैल गया संगीत।

रूप के पंख सहज सुकुमार
कठिन नव यौवन का नवभार
अगम पथ अनजाना विस्तार
कहीं कुछ मिल जाता आधार।

मलिन अंचल में किसी के–
प्यार का उपकार हो,
या किसी करुणामयी के–
हृदय के उद्‌गार हो,
बाल्यपन की टिमटिमाती–
सरसतम अनुभूतियों से
कौन हो तुम मोतियों से।

रात भर अपलक जगोगे
प्रात ही बुझ जाओगे
क्यों जल रहे किस के लिए हो
क्या नहीं बतलाओगे ?
दूर अनजाने गगन में
झिलमिलाते ज्योतियों से
कौन हो तुम मोतियों से !

कभी रोके नहीं रुकता
समय तो बीत ही जाता
अकेली याद रह जाती

न जाने कौन सा झोंका
बुझा दे दीप जीवन का
तिमिर में प्राण खो जाते
उमंगों की, पतंगों की
अधूरी साध रह जाती
अकेली याद रह जाती।

महत्ता कौन सपनों की
बिखरते हैं संवरते हैं
कभी पर एक ही सपना
युगों की साध बन जाता
प्रलय तक सांस अकुलाती
अकेली याद रह जाती।

न कोई बात यदि होती
उसांसें सिंधु क्यों भरता
पवन रहती सिसकती क्यों
न सावन के भरे मन में
तड़ित ऐसे तड़प जाती
अकेली याद रह जाती।

हज़ारों बार उपवन में
बहारें लौट कर आईं
ज़रा सी देर आ जाते
तुम्हारा क्या बिगड़ जाता
किसी की बात रह जाती
अकेली याद रह जाती।

आज जगेंगे लाखों दीपक
दीपक मेरे तुम न जगोगे ?

आज अमावस भी ज्योतिर्मय
कर देंगे वे दो क्षण जलकर
स्नेह शून्य लघुजीवन का तम
दो क्षण भी तुम हर न सकोगे ?

जाने कब से कितने युग से
कितने दीपक जल हुए अमर
बंधन अपनी जड़ता के तुम
दो क्षण भी न तोड़ सकोगे ?

आज जगेंगे लाखों दीपक
दीपक मेरे तुम न जगोगे ?

पग पग पर मेरे भूल हुई
पर कब मैंने स्वीकार किया
स्वीकार नहीं मैं कर पाया
पग पग पर तुमने प्यार दिया

मुख मैंने ही मोड़ा तुम से
तुम कब मुझ से विपरीत हुए
जिस ओर भूल कर जा निकला
तुम मिले स्नेह का दीप लिए ।।

नयनों में ज्योती तुम्हारी थी
था गर्व मुझे अपने–पन पर
मेरा अस्तित्व तुम्हीं से था
मैं रीझ गया तन पर मन पर

इस प्यार प्रणय की क्रीड़ा में
मैं नित हारा तुम जीत गए
जिस ओर भूल कर जा निकला
तुम मिले स्नेह का दीप लिए।

विष पिया घृणा को प्यार समझ
अभिशाप लिया उपकार समझ
कब से सपनों में उलझ उलझ
हूं फूल छोड़ चुन शूल रहा।

आलोकित करते पंथ अथक
कितने दीपक हो गए अमर
मैं भूलों ही भूलों में पर।
अनुकूल हुआ प्रतिकूल रहा।

था एक निष्ठ विश्वास अटल
इस जीवन का उत्कर्ष विमल
मैं अपने-पन में बंधा मगर
कुछ भूल चुका कुछ भूल रहा।

दुःख में तुम याद आए !

बुझ गए वे जो नहीं
वरदान दुख का पा सके
जो प्रतीक्षा में जले हैं–
दीप हैं दुख के जलाए
दुःख में तुम याद आए।

था वही उत्कर्ष सुख का
दुःख मुस्काता मिला जब
चरम सीमा थी सुखों की
दुःख ने जो क्षण दिखाए
दुःख में तुम याद आए।

एक छलना है जिसे जग
नाम देता है सुखों का
दुःख ने जो कुछ दिया है
बन सकेगा क्या भुलाए
दुःख में तुम याद आए।

आंसुओं से घुल गई जब
हो गई मुस्कान उज्वल
अमर निधियां बन गई हैं
दुःख में जो गीत गाए
दुःख में तुम याद आए।

तिमिर हूं पर मैं तुम्हारी ज्योति को आकार दूंगा

स्नेह पा मेरा समुज्वल
निखर जाएंगे सितारे
मैं तुम्हारे चांद पर सर्वस्व अपना वार दूंगा

अर्चना के दीपकों के
साथ ही रह चिर उपेक्षित
मैं तुम्हारे करुण मन को आंसुओं का सार दूंगा

गीत बन बन कर तुम्हारे
साधना के स्वर थकें जब
अंक में उनको सुलाकर फिर नई झंकार दूंगा

दीन हूं अति, जान कर यह
तुम न मुझ से दूर होना
तेज तुमको दे सका न वह तुम्हें उपहार दूंगा

निर्मम कह कर तुम्हें बुलाया
तुम थे मेरे स्वप्न सजाते

जब भी देखा, देखा तुम को
मेरी पीड़ा को उकसाते
मैंने कब देखा है तुमको
मुझ में चिर विश्वास जगाते।

काली रातों के जीवन में
उज्यारे क्षण भी आए हैं
मैं ने समझा चांद गगन का
तुम उर में थे मृदु मुस्काते।

रोते रोते ही थक कर थीं
सो गई आंखें, सोचा मैंने,
मैंने कब देखा था तुम को
देकर लोरी मुझे सुलाते।

आंख खुली तो सौरभ देखी
आलिंगन करती श्वासों का
मैंने समझा लास पवन का
तुम मन में थे रस बरसाते।

क्षण क्षण मेरे जन्म जन्म का
प्रिय तव करूणा का आभारी
एक-मेव तुम्हीं से मेरी
हरी भरी जीवन की क्यारी

नहीं तुम्हें दे सकूं कभी कुछ
क्षण क्षण तुम से जीवनपाऊं
बात हृदय की प्राण प्राण के
तुम्हें नहीं तो किसे सुनाऊं

तुम यदि केवट हो अनन्य तो
टूटी नौका को भी भय क्या
तुम यदि मेरे पास बने हो
सृष्टि मुझे क्या मुझे प्रलय क्या

उन्माद देख कर लहरों का पर
निर्बल मन हूं डर डर जाऊं
स्नेह ओट में ले लो नाविक
तट अपना तरणी में पाऊं

निशा को दिन समझते हैं, दिवस को रात गिनते है
तुम्हारी साधना वाले किसी को क्या समझते हैं।

विजय उनकी नहीं होती, पराजय भी नहीं उनकी
सभी कुछ सौंप जो तुमको, तुम्हें अपना समझते हैं।

कि जिन की मांग भर जाती, तुम्हारी चरण-धूली से
धरा को क्या समझते हैं, गगन को क्या समझते हैं।

तुम्हारे दूर रहने का नहीं रहता गिला उनको
जिन्हें तुम दो लगन अपनी तुम्हें हर जा समझते हैं।

एक तुम को भूल कर कुछ चाहना
खोजना पाना मनन कर सोचना,
भूल थी अभिमान था सब मानकर
आ पड़ा हूं द्वारा अपना जानकर,

जो कृपा कर दो मुझे स्वीकार है
हूं सदा याचक तुम्हारे द्वार का
स्नेह का प्रतिदान तुम से मांगता
पर स्वयं तुमको नहीं कुछ दे सका।

लिए विश्वास दृढ़ मन में
जियूँ पल पल प्रतीक्षा में
नियति भी मुग्ध हो जाए
मुझे ऐसी लगन देना

जलूं नित नेह निष्ठा से
तुम्हारे पंथ पर पावन
पवन भी शांत हो जाए
मुझे ऐसी जलन देना

बिखरते गीत हों जिन से
तुम्हारे प्रेम के प्रियतम
मुझे ऐसा हृदय देना
मुझे ऐसे नयन देना

जहां पर प्रीति जी पाए
जरा से बेखबर हो कर
मुझे ऐसी धरा देना
मुझे ऐसा गगन देना ।

जाओ, तुम को कब कहता हूं,
रुक जाओ
लेकिन देखो
अनजाने में
ये जो तुम
दो चार लकीरें
खींच चले हो
इस कागज़ पर
इन की भी सत्ता है कोई
वैसे, इन को जान अकिंचन
भूल गये भी
तो भी कोई भूल न होगी

लेकिन देखो
कितनी भी हों अर्थहीन ये
इन से है सम्बन्ध तुम्हारा
इन की बातें, बात तुम्हारी
इन की बातें याद तुम्हारी
अपनी बात नहीं करता हूं
मैं कहता हूं,
मिलना और बिछुड़ जाना तो
बना हुआ है
लेकिन देखो
कैसे भी हों
बीते दिन, पर,
याद आया करते हैं
अपनी बातें भूल नहीं जाया करते हैं !

स्नेह में एक अटल विश्वास
प्राण में जीने की चिर प्यास
प्रतीक्षा में यह जीवन दीप
जलेगा पीड़ा से अनजान।

तुम्हारे अन्तस्तल का प्यार
मुझे मिलता जो भी आकर
तुम्हारी चरण-धूलि की साध
प्रतीक्षा जीवन का सम्मान

र जब घिर आए साकार
भी बन जाए यदि भार
की निर्मल सजल पुकार
ा होगी जीवन दान।